स्वयं से संवाद

जे. कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के आलोक में जीवन का अन्वेषण

कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इंडिया का डिजिटल हिन्दी न्यूज़लेटर
राजघाट, वाराणसी केंद्र द्वारा प्रकाशित

अंक एक — वर्षा ऋतु 2021

महत्त्व इसका है कि अब आप क्या हैं, न कि अतीत में आपने क्या किया था

प्रश्न : कर्म के सिद्धांत के अनुसार, जिसमें हममें से कई विश्वास रखते हैं, हमारे इस जीवन के कार्य और हालात अधिकांशतः इससे संचालित होते हैं कि हमने अपने पिछले जन्मों में क्या किया था। क्या आप इस बात से अस्वीकार करते हैं कि हम अपने कर्मों द्वारा ही संचालित होते हैं? हमारे कर्तव्यों तथा दायित्वों के विषय में आपका क्या कहना है?

कृष्णमूर्ति : जनाब, फिर एक मर्तबा, यह बड़ा ही जटिल प्रश्न है, और इस पर पूरे तौर पर विचार किये जाने की आवश्यकता है। मसला यह नहीं है कि आप क्या विश्वास रखते हैं। आपका विश्वास है कि आप अपने अतीत का परिणाम हैं, कि आपके पिछले जन्मों ने आपके वर्तमान हालात पर असर डाला है, उन्हें संस्कारित किया है, और फिर अन्य कई हैं जो इस सब में विश्वास नहीं रखते। उनका पालन-पोषण इस विश्वास के साथ हुआ है कि हम केवल एक ही जीवन जीते हैं और केवल अपने वर्तमान वातावरण से ही संस्कारित होते हैं। अतः आइए कुछ समय के लिए, हमारा विश्वास किसमें है किसमें नहीं, इसे एक ओर रखकर, यह पता लगाएं कि कर्म से हमारा तात्पर्य क्या है, जो कि कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि यदि आप वास्तव में समझ पाएं कि कर्म क्या है तो आपको मालूम हो जाएगा कि यह ऐसा कुछ नहीं है जो आपके वर्तमान कृत्य को नियंत्रित करता हो। हम इसकी गहराई में जाएंगे और आप इसे देख सकेंगे।

अब, कर्म से हमारा मतलब क्या है? जैसा कि आप जानते हैं स्वयं इस शब्द 'कर्म' का अर्थ है किसी कार्य को अन्जाम देना, करना। आप कभी भी किसी वजह के बिना, किसी प्रयोजन के बिना या हालात से मजबूर हुए बगैर कोई कार्य नहीं करते। आप या तो अतीत के, यानी हज़ारों-हज़ार गुजरे कलों के असर तले कुछ करते हैं, या इस वजह से करते हैं कि आपको फौरी, तात्कालिक हालात के द्वारा किसी दिशा विशेष में धकेला जा रहा है। इसका मतलब है, कोई कारण होता है और फिर एक प्रभाव, परिणाम होता है। इसको थोड़ा समझिए। उदाहरण के तौर पर आप मुझे सुनने के लिए यहां आये हैं। तो कारण यह है कि आप सुनना चाहते हैं, और सुनने का प्रभाव आपको पता लग पाएगा यदि आपकी वास्तव में दिलचस्पी है। परंतु आशय यह है कि एक कारण होता है, और उसका एक प्रभाव होता है।

अब, यह कारण क्या कभी भी नियत हुआ करता है, और प्रभाव उसका निश्चित-निर्धारित रहा करता है? आप समझ रहे हैं, जनाब? जैसे कि बलूत का बीज है, या कोई और बीज है, उसमें तो एक सुनिश्चित कारण और सुनिश्चित प्रभाव-परिणाम रहता है। बलूत का बीज कभी भी खजूर का वृक्ष नहीं बन सकता, यह हमेशा बलूत का वृक्ष ही बनेगा। हम कर्म के विषय में भी कुछ ऐसा ही सोचा करते हैं, है कि नहीं? कल कुछ कर लेने पर, जो कि कारण है, मैं सोचने लगता हूँ कि आज उस कर्म का प्रभाव पूर्वनिर्धारित, बँधा-बँधाया होने वाला है। परंतु क्या ऐसा है? क्या

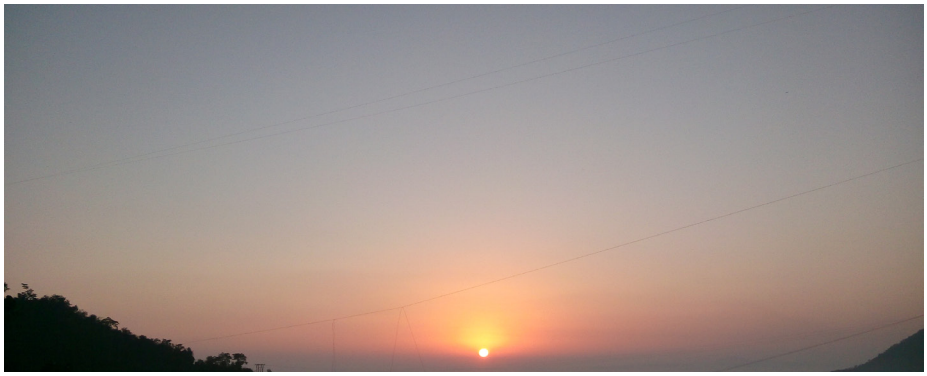

कारण नियत है? और क्या उसका प्रभाव-परिणाम नियत है? क्या किसी कारण का परिणाम अपनी बारी में फिर किसी अन्य परिणाम का कारण नहीं बन जाया करता? आप समझ रहे हैं न? मैं और अधिक उदाहरण नहीं देना चाहता, क्योंकि उदाहरण वास्तव में किसी विषय को स्पष्ट नहीं करते हैं, अपितु उसे और भी उलझा दिया करते हैं। अतः हमें उदाहरणों का प्रयोग किए बगैर, इस पर स्पष्टता से विचार कर लेना चाहिए।

हम जानते हैं कि कर्म का कोई तो कारण होता है। मैं महत्त्वाकांक्षी हूँ; अतः मैं कुछ करता हूँ। यहां एक कारण है, और एक परिणाम। अब क्या वह परिणाम किसी आगामी कर्म का कारण नहीं बन जाया करता? निश्चित ही, कभी कोई नियत कारण अथवा नियत परिणाम नहीं हुआ करता। प्रत्येक परिणाम बेशुमार असरात से गुजरते हुए और उनके द्वारा रूपांतरित होते हुए किसी और परिणाम का कारण बन जाता है। अतः कभी कोई बँधा-बँधाया कारण नहीं होता, और न ही बँधा-बँधाया परिणाम, अपितु कारण-परिणाम-कारण की एक शृंखला होती है।

'हमेशा व्यस्त होने के कारण, हमारी समस्याएं बढ़ती ही जाती हैं; मन की व्यस्तता की समूची प्रक्रिया को समझे बिना किसी एक विशिष्ट समस्या का समाधान केवल दूसरी समस्याएं ही पैदा करेगा।'

लंदन, जून 17, 1955

जनाब, यह तो कितनी ज़ाहिर सी बात है। आपने कल कुछ किया था, जिसका उद्गम, स्रोत, किसी पिछले कारण में था, और जो कल किन्हीं खास नतीजों की तरफ ले जाएगा; परंतु इसी बीच उन नतीजों पर अनगिनत दबाव तथा असर पड़ते हैं, और इसलिए उन नतीजों में बदलाव आ चुका होता है। आप सोचते हैं कि कोई प्रदत्त कारण, निश्चित परिणाम ही लाएगा, परंतु कभी भी परिणाम ठीक वही नहीं हुआ करता, क्योंकि उन दोनों—कारण और परिणाम—के बीच कुछ और भी हो चुका रहता है।

अतः कारण के परिणाम बनने की तथा उस परिणाम के कारण बन जाने की एक निरंतर शृंखला होती है। यदि आप सोचते हैं कि "मैं अतीत में वैसा था, मैं आज ऐसा हूँ, और मैं अगले जन्म में कुछ ऐसा बन जाऊंगा", तो यह अपरिपक्वता की हद, बहुत ही मूढ़तापूर्ण सोच है, क्योंकि सोचने के इस तरीके में प्रवाह नहीं है, इसमें सजीवता का, जीवंतता का गुण नहीं है। यह तो क्षय, अवनति, मृत्यु है। परंतु यदि आप इस मसले पर गहराई से सोचें, तो यह वाकई अद्भुत है, क्योंकि तब आप देख पाएंगे कि किसी कारण-परिणाम के अन्य कारण बनते जाने की यह शृंखला किसी भी समय तोड़ी जा सकती है, और यह मन कर्म से आजाद हो सकता है। मन—जो अतीत से संस्कारित है, 'कंडीशंड' है—की समग्र प्रक्रिया को समझते हुए आप अपने आप यह देख पाएंगे कि वर्तमान में अथवा भविष्य में अतीत का प्रभाव कभी बँधा-बँधाया नहीं होता, कभी सुनिश्चित, अंतिम नहीं होता। यह अंतिम है ऐसा सोचना तो अधोपतन, अज्ञान, अंधकार होगा। जब कि, यदि आप कारण-परिणाम के फिर से कारण बनते जाने के अभिप्राय को समझ

लें, उस स्थिति में चूंकि यह समूची प्रक्रिया आपके लिए एक सजीव, गतिशील घटना होती है, आप इसे किसी भी समय तोड़ सकते हैं; अतएव आप अतीत से मुक्त हो सकते हैं। आपको अब ईसाई, बौद्ध, हिन्दू होने की, इनसे जुड़ी तमाम संस्कारग्रस्तता की जरूरत नहीं रह जाती; आप अपने आप को तत्क्षण रूपांतरित कर सकते हैं, खुद में इसी पल बदलाव ला सकते हैं।

जनाब, क्या आप नहीं जानते कि आप एक ही प्रहार से ईर्ष्या को काट सकते हैं? क्या आपने कभी ऐन मौके पर ही वैमनस्य को, वैर-भाव को तोड़ने का जतन किया है? मुझे मालूम है कितना आरामदेह होता है बैठे-बैठे यह कह देना कि "भई यह तो कर्मवश है कि मुझमें आपके लिए वैरभाव है"। ऐसा कहने से बड़े संतोष का एहसास होता है, घृणा को जारी रखने का सुख मिल जाता है। परंतु यदि आप कर्म की पूरी महत्ता को, पूरे मायने को समझ-बूझ पाएं, तो आप देखेंगे कि कारण के परिणाम बनने और फिर उस परिणाम के कारण बनने के इस सिलसिले को तोड़ा जा सकता है। और इसलिए यह मन आश्चर्यजनक रूप से, पूरी जीवंतता के साथ, अतीत से मुक्त हो सकता है, इसी क्षण। लेकिन इसके लिए कड़ी मेहनत की दरकार होती है; इसके लिए खूब अवधान, 'अटेंशन' की, खूब

तहकीकात की, गहरी पैठ की, स्वयं को जानने की आवश्यकता होती है। और हममें से अधिकतर अकर्मण्य, आलसी हैं; कर्म-सिद्धांत में विश्वास कर लेने से हम बड़ी आसानी से संतुष्ट हो जाया करते हैं। हद है! इससे क्या फर्क पड़ता है कि आप कर्म के सिद्धांत में विश्वास करते हैं या नहीं करते हैं? *अब* आप क्या हैं महत्त्व इसका है, न कि आपने अतीत में क्या किया था, और वर्तमान में उसके क्या प्रभाव-परिणाम आ रहे हैं। और अब आप क्या हैं? मेरी बनिस्बत आप यह बेहतर जानते होंगे। जो आप अब हैं, ज़ाहिर है कि वह अतीत का परिणाम है, बेशुमार असरात का, विवशताओं का परिणाम, खानपान, जलवायु, पश्चिम से संपर्क वगैरह, वगैरह का परिणाम। इस सब के दबाव में मन सुस्त, अकर्मण्य बन जाता है, शब्दों से आसानी के साथ संतुष्ट हो जाने वाला। ऐसा मन सत्य के, ईश्वर के विषय में बातें कर सकता है, निर्वाण और उस तरह की तमाम चीज़ों में विश्वास रख सकता है; परंतु उस विश्वास का उससे ज़्यादा कोई मूल्य नहीं है जितना कि साम्यवाद, ईसाइयत अथवा किसी भी अन्य विश्वास का है।

मन का रूपांतरण तभी हो सकता है जब यह स्वयं की समूची प्रक्रिया को, तथा प्रयोजनों को, उस प्रक्रिया के कारण-कार्य संबंध को समझ ले। इस समझ में मन के लिए अथाह संभावनाएं हैं क्योंकि यह समझ द्वार खोलती है एक अद्‌भुत सर्जनात्मकता, 'क्रीएटिविटी' का, जो कि कुछ कविताएं लिख लेना या किसी चित्रफलक पर कुछ रंग उकेर देना भर नहीं है, अपितु एक ऐसी अवस्था है जो कि यथार्थ है, ईश्वर है, सत्य है। और इसके लिए आपको किन्हीं आदर्शों की आवश्यकता नहीं बल्कि आदर्श तो तत्काल समझने में बाधा बन जाते हैं। हमें भ्रांतियों तथा व्यर्थताओं की खुराक पर पाला गया है, और हम

किसी सत्ता के, 'अथॉरिटी' के सामने, धार्मिक एवं राजनीतिक निरंकुशता के सामने आसानी से हार मान लेते हैं; और ऐसा मन उसे किस तरह से खोज पाएगा जो शाश्वत है, जो मन के अपने प्रक्षेपणों कल्पनाओं से परे है? मेरा कहना है कि कर्म की इस निरंतरता को तोड़ना संभव है, परंतु तभी जब आप कर्म के कार्य-व्यापार को समझ पाएं, जो अटल, पूर्वनिर्धारित नहीं है, अपितु कुछ ऐसा है जो सजीव है, गतिमान् है; और अतीत से स्वयं को विच्छिन्न कर लेने में ही मन जान जाएगा कि सत्य, अथवा ईश्वर क्या है।

कोलम्बो, 23 जनवरी, 1957

'समय से परे' पुस्तक से

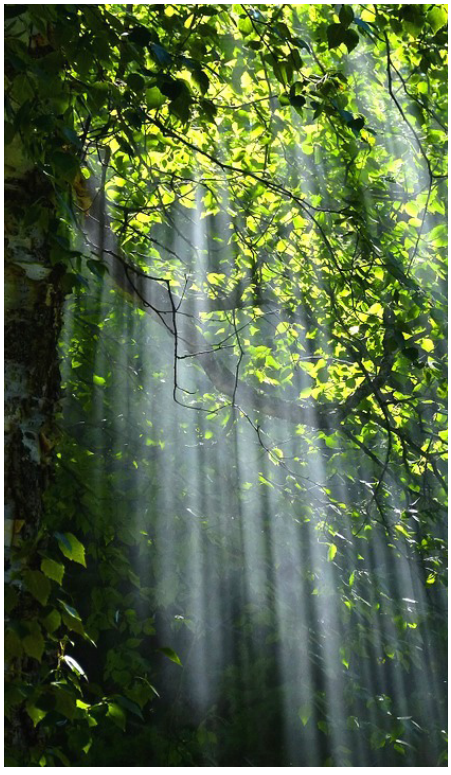

हमारी चेतना का वास्तविक स्वरूप क्या है

हमें बहुत-बहुत गंभीर होना होगा, छिछोरेपन से, लापरवाही से काम नहीं चलेगा, हमें वास्तव में ज़िम्मेदारी के साथ मनुष्य के इस बर्ताव को परखना होगा और यह भी समझना होगा कि किस तरह मानवीय चिंतन ने हम सब को इस मुकाम पर ला खड़ा किया है। हमारे बाहर तथा भीतर जो कुछ घटित हो रहा है उसे समझने के लिए हम सब को मिल-जुल कर बड़ी सावधानी के साथ, कुछ हिचकिचाहट के साथ, गहन अवलोकन के साथ उस सब की गहराई में प्रवेश करना होगा। आंतरिक, मानसिक क्रियाशीलता हमेशा बाहरी क्रियाकलाप पर हावी हो जाती है। बाहरी तौर पर चाहे जितने कानून, दंड-विधान और निर्णय आप लिये रहें, वे सब हमारी मनोगत इच्छाओं के कारण, हमारे डरों के कारण, हमारी चिंताओं के कारण, हमारी सुरक्षा की लालसा के कारण चकनाचूर हो जाते हैं। जब तक हम इस बात को नहीं समझते, तब तक बाहरी सुव्यवस्था का जो भी आभास हमारे पास हो, और वह चाहे जितना परंपरासंगत, अनुशासित तथा नियमित क्यों न लगे, भीतर की अव्यवस्था इस बाहरी दिखावे पर हमेशा हावी होती रहेगी। हमारे यहां बड़ी सतर्कता के साथ

बनायी गयी संस्थाएं—राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक संस्थाएं—भले ही हों, फिर भी उनकी अच्छी से अच्छी बनावट के बावजूद, यदि हमारी भीतरी चेतना पूर्ण रूप से सुव्यवस्थित न हो तो भीतर की अव्यवस्था बाहर की दिखावटी व्यवस्था पर हावी हो जाएगी। हमने ऐतिहासिक रूप से ऐसा होते हुए देखा है, और अब भी हमारी आँखों के सामने ऐसा ही हो रहा है। यह एक सच्चाई है।

तो क्रांतिकारी मोड़ हमारी चेतना के तहत ही है। हमारी चेतना एक बहुत ही पेचीदा मामला है। इस पर अनगिनत ग्रंथ लिखे गये हैं, पूरब में भी और पच्छिम में भी। हम अपनी चेतना के बारे में कुछ नहीं जानते। पेचीदगियों से भरी इस चेतना की यदि जांच-पड़ताल करनी हो, तो हमें अवलोकन के लिए मुक्त होना होगा, बिना किसी पसंद-नापसंद के उसकी गतिविधि के प्रति सजग होना होगा। ऐसा मत समझिए कि चेतना की भीतरी गतिविधि को किसी विशिष्ट ढंग से देखने या सुनने के लिए यह वक्ता आप को निर्देशित कर रहा है। समूची मानव-जाति की एक ही चेतना है। विश्व भर में मनुष्य भीतर से तथा बाहर से पीड़ित है—चिंता से, अनिश्चितता से, अकेलेपन की उत्कट हताशा से वह परेशान है, असुरक्षा, ईर्ष्या, लोभ, मत्सर तथा पीड़ा से ग्रस्त है। मानवचेतना समग्रतः एक ही है। वह आपकी और मेरी अलग-अलग चेतना नहीं। यह सब तर्कसंगत है, विवेकसंगत है, बुद्धिसंगत है। आप जहां कहीं भी जाएं, किसी भी आबोहवा में रहें, आप धनाढ्य हों या दीन-हीन निर्धन, आप भगवान पर विश्वास करते हों या किसी और सत्ता पर, सच यह है कि विश्वास या श्रद्धा करना समग्र मानव जाति का समान लक्षण है। विभिन्न प्रतिमाएं होंगी, विभिन्न प्रतीक होंगे, किंतु उन सब की उपज एक ऐसी जमीन से हुई है जो संपूर्ण मनुष्य जाति के लिए समान है। यह एक शाब्दिक कथन-मात्र नहीं। इसे यदि आप एक शाब्दिक कथन भर मान लें, एक धारणा या संकल्पना मात्र मान बैठें तो आप इसमें निहित गहरे अभिप्राय को समझ नहीं पाएंगे। और अभिप्राय यह है कि आपकी चेतना सारी मनुष्य जाति की चेतना है। इसलिए कि आप ठीक उसी तरह पीड़ित हैं, चिंतित हैं, अकेले हैं, असुरक्षित हैं, विभ्रांत हैं जिस तरह और मनुष्य प्राणी, भले ही वे दस हज़ार मील की दूरी पर रहते हों। इस कथन का सही बोध, इसकी बिलकुल अंतस्तल से अनुभूति एक बात है और इसकी मात्र शाब्दिक स्वीकृति बिल्कुल अलग बात। जब आपको सच में एहसास हो कि आप ही समस्त मानव जाति हैं, तब प्रचंड ऊर्जा उत्पन्न होती है, व्यक्ति-विशिष्टता की संकुचित लीक से आप बाहर निकल आते हैं, *मैं* और *आप*, *हम* और *वे* के संकुचित दायरे को आप लाँघ चुके होते हैं। मनुष्यजाति की इस बहुत ही जटिल चेतना की हम सब एकसाथ जांच-पड़ताल कर रहे हैं। यूरोपीय, एशियाई या मध्यपूर्व के मनुष्य की चेतना की नहीं, बल्कि लाखों वर्षों से समय के अंतर्गत मनुष्य चेतना में चल रही असाधारण गतिविधि की जांच-पड़ताल।

इस वक्ता की कही बात को स्वीकार मत कर लीजिए। यदि आप इस तरह स्वीकार कर लेते हैं तो उसका कोई अर्थ नहीं। यदि आप संदेह करना शुरू नहीं करेंगे, शंका उठाना शुरू नहीं करेंगे, अन्वेषण के लिए अविश्वासी नहीं बनेंगे, यदि आप अपने विशिष्ट विश्वास से, निष्ठा से, अनुभव से, या संगृहीत ज्ञान से चिपके रहेंगे, तो इस जांच-पड़ताल को एक निरर्थक क्षुद्रता के स्तर पर ला छोड़ेंगे। और आप ऐसा करते हैं, तो फिर मनुष्य के सम्मुख खड़ी ज़बरदस्त समस्या का सामना आप नहीं कर पाएंगे।

हमें यह देखना है कि हमारी वास्तविक चेतना का स्वरूप क्या है। विचार तथा विचार द्वारा जुटायी सारी बातें हमारी चेतना का हिस्सा हैं। हमारी संस्कृति, हमारे सौंदर्यपरक मूल्य, हमारे अर्थिक दबाव, हमारी राष्ट्रीय विरासत, ये सारी बातें उसी चेतना का हिस्सा हैं। आप यदि कोई शल्यचिकित्सक हैं, या कोई बढ़ई हैं, या किसी व्यवसाय विशेष में प्रावीण्य प्राप्त कर लेते हैं तो उस समूह की चेतना आपकी अपनी चेतना का हिस्सा बन जाती है। किसी विशिष्ट परंपरा तथा धार्मिक संस्कृति वाले किसी विशिष्ट देश में यदि आप रहते हैं, तो वह विशिष्ट सामूहिक चेतना आपकी अपनी चेतना का हिस्सा बन जाती है। ये सच्चाइयां हैं। आप बढ़ई हैं तो आपके पास कुछ कौशल्य होने चाहिएं, आप को लकड़ी की ठीक-ठीक परख होनी चाहिए, काष्ठकर्म में प्रयुक्त होने

वाले उपकरणों की जानकारी होनी चाहिए; इस प्रकार क्रमशः आप काष्ठकर्म में प्रवीण समूह के सदस्य बन जाते हैं; उस समूह की अपनी एक विशिष्ट चेतना होती है, और वह चेतना आपकी चेतना का हिस्सा बन जाती है। किसी वैज्ञानिक या पुरातत्त्वविशारद पर भी यही बात लागू होती है, उनकी भी एक विशिष्ट सामूहिक चेतना होती है, ठीक उस प्रकार जैसे प्रत्येक जंतुवर्ग की अपनी विशिष्ट सामूहिक चेतना होती है। यदि आप कोई गृहिणी हैं तो आपकी एक विशिष्ट सामूहिक चेतना होगी—गृहिणी चेतना, और इस सामूहिक चेतना में और सारी गृहिणियां साझेदार होंगी। सारे विश्व में आज उन्मुक्त जीवन शैली फैल रही है, उसका आरंभ सुदूर पश्चिम में हुआ और फिर वह धीरे-धीरे सारे विश्व में फैल गयी। वह भी सामूहिक चेतना का आंदोलन है। इसके अभिप्राय को समझिए, आप स्वयं इसकी जांच पड़ताल कीजिए और देखिए इसमें क्या अंतर्निहित है।

हमारी चेतना में, उसकी गहराई में हमारे भय भी समाविष्ट हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी मनुष्य भय के साथ जीता रहा है। सुख-भोग के साथ, ईर्ष्या के साथ, अकेलेपन की पीड़ा के साथ, उदासी के साथ, विभ्रम के साथ वह जीता रहा है। गहरी वेदना के साथ वह जीता आया है, उस भावना के साथ जीता आया है जिसे वह प्रेम कहता है, और सदा विद्यमान मृत्यु के भय के साथ भी। यह सब उसकी चेतना में है, और वह चेतना सभी मनुष्य प्राणियों की समान चेतना है। इसके अभिप्राय को अनुभव कीजिए; इसका अभिप्राय यह है कि आप एक पृथक् व्यक्ति विशेष नहीं हैं। इस बात को स्वीकार करना बहुत कठिन है, क्योंकि अपने को पृथक् व्यक्ति विशेष मानने के लिए हम किसी कम्प्यूटर की भांति पूर्वनियोजित हैं। धार्मिक तौर पर हमें यह मानने के लिए नियोजित किया गया है कि हमारी आत्मा दूसरे मनुष्यों की आत्माओं से अलग है। पूर्वनियोजित होने के कारण हमारा मस्तिष्क, सदी-दर-सदी, एक ही ढर्रे में कार्य करता आया है।

यदि हम अपनी चेतना की प्रकृति को समझ लेते हैं, तो फिर इस दुखग्रस्त 'मैं' का सारा वैयक्तिक प्रयास एक वैश्विक अर्थवत्ता ग्रहण कर लेता है, और तब एक बिलकुल ही अलग क्रिया घटती है।

'सोच क्या है?' पुस्तक से

''भविष्य इसी क्षण है''

1973 के जून महीने में ब्रॉकवुड में तीनों फाउंडेशन के प्रतिनिधियों की एक अंतरराष्ट्रीय बैठक हुई। ऐसा पहली बार हो रहा था। 'के' की चिंता उन समस्याओं के बारे में थी जो उनकी मृत्यु के बाद तथा मौजूदा ट्रस्टियों की मृत्यु के बाद खड़ी हो सकती थीं। भविष्य के बारे में उनका दृष्टिकोण पहले की अपेक्षा पूर्णतया बदल चुका था। अगस्त, 1968 में एपिंग फॉरेस्ट में सैर करते हुए जब मेरे पति ने उनसे पूछा था कि उनकी मृत्यु के बाद उनके नये इंग्लिश फाउंडेशन का क्या होगा, तो उनका बड़ा बेफिक्र जवाब था : ''यह सब मिट जाएगा।'' उनकी शिक्षाएं रहेंगी, पुस्तकें और कैसेट रहेंगे; बाकी सब कुछ चला जा सकता है।

इस अंतरराष्ट्रीय बैठक में जब उन्हें यह सुझाया गया कि वह कुछ युवा लोगों को चुन लें जो शिक्षाओं को आगे ले जा सकें तो उनका जवाब था : ''अधिकांश युवा लोग मेरे और अपने बीच एक ढाल बनाकर बात करते हैं। युवा लोगों की तलाश करना फाउंडेशन की ज़िम्मेदारी है। मेरी तुलना में आपके लिए यह करना आसान होगा, क्योंकि लोग मेरे प्रेम में पड़ जाते हैं, मेरे चेहरे के प्रेम में, व्यक्तिगत

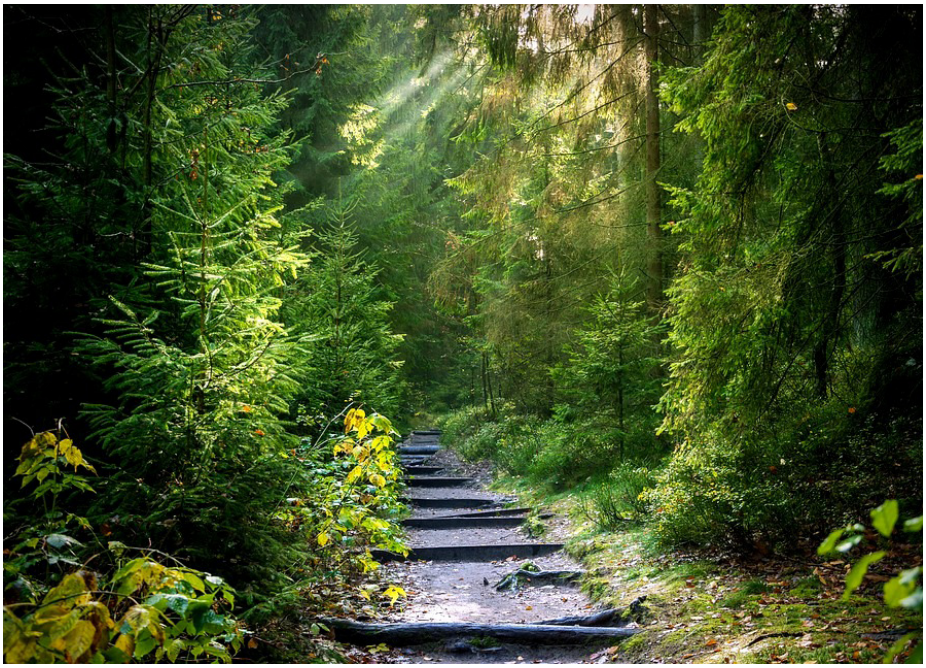

रूप से वे मेरी तरफ आकर्षित हो जाते हैं, या आध्यात्मिक रूप से आगे बढ़ने की चाह के कारण... पर इन विद्यालयों को निश्चित रूप से आगे चलते जाना है क्योंकि हो सकता है कि ये विद्यालय एक भिन्न प्रकार के मनुष्य को जन्म दे सकें।''

एक भिन्न प्रकार के मनुष्य का निर्माण करना ही कृष्णमूर्ति की शिक्षा का उद्देश्य था। उस साल की सानेन गैदरिंग में उनका मुख्य विषय था कि कैसे 'एक मूलभूत, क्रांतिकारी, मनोवैज्ञानिक परिवर्तन' मन में लाया जाए। इसके अलावा उन्होंने अब यह कहना शुरू कर दिया था कि परिवर्तन तत्क्षण ही होना जरूरी है। यह कहना व्यर्थ होगा कि 'मैं बदलने की कोशिश करूंगा' अथवा 'मैं कल बदल जाऊंगा', क्योंकि आज आप जो हैं वही कल भी होंगे। 'भविष्य इसी क्षण है' उक्ति उनके प्रयोग का हिस्सा बन रही थी। सानेन के बाद 'के' वार्षिक सम्मेलन में हिस्सा लेने के लिए ब्रॉकवुड लौट आए। ब्रॉकवुड में यह वार्षिक सम्मेलन पिछले चार वर्षों से हो रहा था। अक्टूबर में भारत जाने तक वे वहां टिके रहे। अब 'के' जब भी ब्रॉकवुड में होते

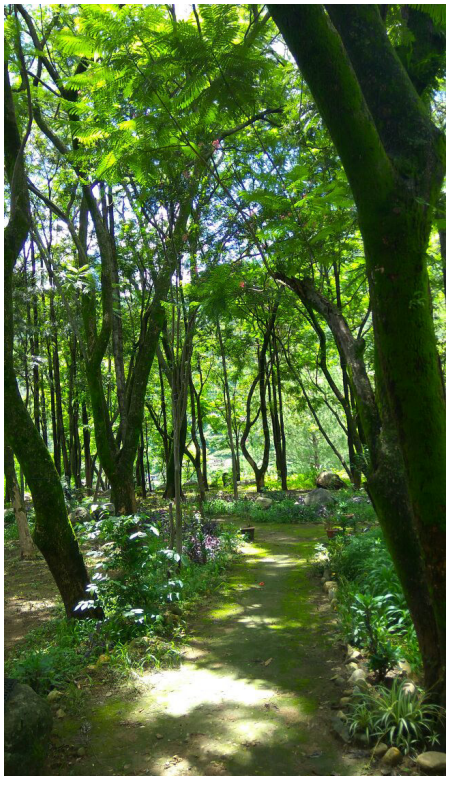

तो प्रायः सप्ताह में एक बार मेरी ज़िंबलिस्ट के साथ लंदन जाते—कभी दाँत के डॉक्टर के पास और कभी बांड स्ट्रीट में 'टूफिट एंड हिल' हेयर कटिंग सेलून में। पर वे अपने दर्जी 'हंट्समन' के यहां जाना कभी नहीं भूलते-अक्सर उन्हें कोई पतलून ठीक करवानी होती, या किसी सूट को फिटिंग के लिए पता नहीं कितनी बार देना होता जो कभी भी उनके मापदंड की कसौटी पर पूरी तरह खरा नहीं उतरता। नया सूट वह शायद ही सिलवाते थे। उस दुकान के माहौल को शायद वह पसंद करते थे, इसलिए वहां से जल्दी जाने का नाम नहीं लेते और काउंटर पर पड़े कपड़ों के ढेर का पूरे ध्यान से निरीक्षण करते। वे लोग जब कभी लंदन आते तो मैं उनके साथ 'फोर्टनम एंड मेसन' की चौथी मंजिल पर स्थित रेस्टोरेंट में लंच करने के लिए जाती। बरलिंग्टन आर्केड होकर सेविल रो से यहां पैदल सैर करते हुए थोड़ी ही देर में पहुंचा जा सकता था। यह रेस्टोरेंट हैचर्ड्स नाम की किताब की दुकान की बगल में था जहां से 'के' अपराधकथाओं के पेपरबैक संस्करण खरीदकर अपने संग्रह को नया करते रहते थे। इस रेस्टोरेंट में शाकाहारी व्यंजनों की सूची बहुत छोटी थी पर जगह शांत और फैली हुई थी; मेजों के बीच की दूरी इतनी थी कि एक की बातचीत दूसरे तक न पहुंचे। 'के' अपने चारों तरफ बैठे लोगों को बड़े ध्यान से देखते कि वे क्या पहने हैं, क्या खा रहे हैं और कैसे खा रहे हैं, और कैसे पेश आ रहे हैं। एक बार कोई मॉडल सभी मेजों का चक्कर लगाती हुई जा रही थी। 'के' मुझको और मेरी को कोहनी से छूकर इशारा करते हुए कहते : ''देखो, देखो! वह चाहती है कि हम उसे देखें।''. ..पर हमसे अधिक उनकी इस बात में दिलचस्पी काफी ज़्यादा होती कि वह क्या पहने हुए है। कपड़ों में वह हमेशा बहुत अधिक दिलचस्पी लेते थे, केवल अपने कपड़ों में ही नहीं बल्कि औरों के भी। कभी-कभी मैं अपनी हीरे की अँगूठी उन्हें पहनने के लिए देती। इस अँगूठी को वह अच्छी तरह पहचानते थे, क्योंकि मेरी माँ इसे हमेशा पहना करती थीं। इसे वह अपनी छोटी उँगली में पहन लिया करते थे। रेस्टोरेंट से निकलते समय जब वह अँगूठी को वापस करते तो वह इस तरह चमका करती थी जैसे अभी-अभी जौहरी ने उसकी सफाई की हो। यह कोई कल्पना नहीं होती थी। एक दिन इसी तरह लंच करने के बाद जब मैं अपनी नातिन से मिली तो उसने कहा-''आपकी अँगूठी कितनी खूबसूरत लग रही है। क्या इसे अभी साफ करवाया है?''

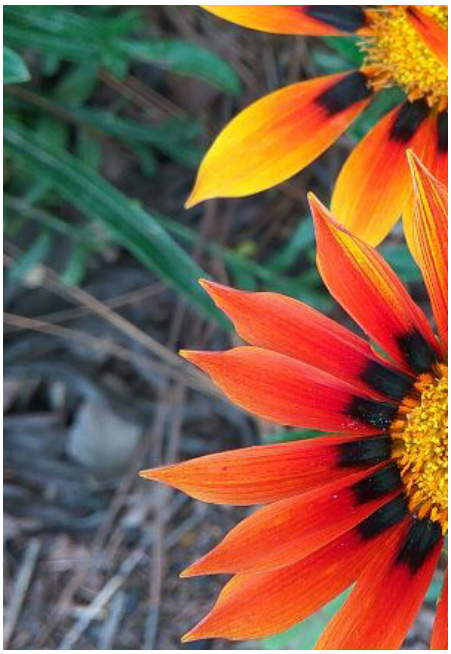

1970 के दशक में 'के' के एक मित्र ने उनका वर्णन इस प्रकार किया : *'उनसे जब कोई मिलता है तो उनमें क्या पाता है? सच में, सर्वाधिक ऊँचे दर्जे की श्रेष्ठता, शक्तिसंपन्नता, शालीनता और गरिमा। उनमें आप उत्कृष्ट कोटि की सौजन्यता पाएंगे, अत्यंत परिष्कृत सौंदर्यबोध और अपार संवेदनशीलता पाएंगे, तथा जो भी समस्या आप उनके पास लेकर जाएंगे उसमें उनकी एक तीक्ष्ण अंतर्दृष्टि आपको नजर आएगी।*

कृष्णमूर्ति में कहीं भी आपको फूहड़ता, तुच्छता या सामान्य क्षुद्रता का रत्तीभर अवशेष नहीं मिलेगा। कोई उनकी शिक्षा को समझे या न समझे, कोई उनके बोलने के लहजे या शब्दों में शायद कुछ दोष निकाल भी ले, पर यह बात तो कल्पना से परे है कि कोई भी उस श्रेष्ठता और शालीनता से इन्कार कर पाए जो उनके व्यक्तित्व से होकर बहती है। शायद यह कहना गलत न होगा कि उनका ढंग, उनका दर्जा साधारण व्यक्ति से काफी ऊपर और बहुत ही परे का रहा।

जरा भी शक नहीं कि ये शब्द उनको संकोच में डाल देंगे। पर सच्चाई को आप कहां तक छुपाएंगे। उनका पहनावा, आचरण, व्यवहार, उनका उठना-बैठना और उनकी बोली उत्कृष्ट रूप से वैभवशाली है। जब भी वह किसी कमरे में प्रवेश करते हैं, तो वहां कुछ बहुत ही असाधारण घटित होता है।

'के' की अच्छे कपड़ों और कारों में रुचि देखकर, पलायनवादी उपन्यासों और फिल्मों में उनकी दिलचस्पी देखकर कुछ लोगों को उनमें किसी तरह की विसंगति नजर आई। 'के' को यह सूझा ही नहीं कि इतनी छोटी-छोटी बातों में या तो वह अपने रुझान को बदल लें या ऐसा दिखाएं कि उनकी इन रुचियों के अलग ही मायने हैं।

एक दिन शरदकाल में जब वह लंदन में थे तो मैंने उनको सुझाया कि उन्हें फिर से दैनंदिनी ('जर्नल') लिखना शुरू करना चाहिए जैसा कि उन्होंने 1961 में किया। उन्हें यह विचार इतना पसंद आया कि उसी दोपहर को वह कुछ कापियां और चौड़ी निब वाला एक नया फाउंटेन पेन खरीद लाए और अगले दिन (14 सितंबर) सुबह से ही लिखना आरंभ कर दिया। छः हफ्तों तक वे रोजाना लिखते रहे। ज़्यादातर हिस्सा उन्होंने ब्रॉकवुड में लिखा और अक्टूबर में रोम जाने पर भी उन्होंने इसे जारी रखा। उनका यह दैनिक लेखन 1982 के आरंभ में 'कृष्णमूर्तीज़ जर्नल' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस किताब में 'के' जितना व्यक्तिगत रूप से सामने आते हैं, उतना और किसी किताब में नहीं। स्वयं का अन्य पुरुष के रूप में वर्णन करते हुए 15 सितंबर को उन्होंने लिखा : ''उसे कुछ ही दिन पहले यह एहसास हुआ कि इन लंबी सैरों पर जाते वक्त उसके भीतर एक भी विचार नहीं चलता है...जब वह बालक था तभी से ऐसा है, कोई भी विचार उसके मन में प्रवेश नहीं करते थे। वह बस देखता था, सुनता था, और कुछ भी नहीं। विचार अपने तमाम साहचर्य के साथ उसमें उठते ही नहीं थे। किसी तरह की छवियों, प्रतिमाओं का निर्माण ही नहीं होता था। एक दिन उसे अचानक ही आभास हुआ कि यह कितना अद्‌भुत था; उसने अक्सर सोचने का प्रयास भी किया पर कोई विचार नहीं उठा। इन लंबी सैरों में, चाहे लोग साथ में हों या न हों, विचार की कोई गतिविधि मौजूद नहीं रहती है। यह एकाकी होना है।'' 17 तारीख को उन्होंने लिखा : ''उसे हमेशा वृक्षों, नदियों, पर्वतों के साथ एक अजीब सी एकात्मकता का बोध होता था। यह बोध जान-बूझकर लाया नहीं गया था, आप ऐसी किसी चीज़ का संवर्धन नहीं कर सकते हैं। उसके और किसी अन्य के मध्य कभी कोई दीवार नहीं रही। उसको इस बात से कभी कोई आघात नहीं पहुँचा कि उन लोगों ने उसके साथ क्या किया, उसको क्या कहा, और न ही किसी प्रकार की खुशामद का उस पर असर हुआ। वह पता नहीं कैसे इस सबसे पूरी तरह अछूता रहा। उसने स्वयं को अलग-थलग नहीं रखा बल्कि वह नदी के प्रवाह के समान रहा। उसे विचार भी कितने थोड़े आते थे, सैर के समय तो बिलकुल ही नहीं।'' 21 तारीख को उन्होंने लिखा : ''पता नहीं कितना कुछ उसके साथ हुआ, प्रशंसा और अपमान, संकट और सुरक्षा, पर वह किसी बात से आहत नहीं हुआ। ऐसा नहीं कि वह संवेदनहीन और अबोध था, बल्कि उसके मन में अपने बारे में कोई छवि नहीं थी, कोई निष्कर्ष और सिद्धांत नहीं था। छवि प्रतिरोध है और जब यह नहीं होती तो सुकोमलता होती है पर कोई घाव नहीं होता।''

दो दिन बाद उन्होंने लिखा : *नदी के निचले तट पर वह अकेला खड़ा था... कोई भी आसपास नहीं, एकाकी, असंलग्न और सुदूर। वह लगभग चौदह साल या इससे कम का रहा होगा। उसे और उसके भाई को अभी हाल ही में खोजा गया था; सारा तामझाम उसके चारों तरफ था और उसे एकाएक इतनी अहमियत*

दे दी गई थी। आदर व श्रद्धा का वह केंद्र था। आने वाले सालों में उसे तमाम संस्थाओं और विशाल संपत्तियों का प्रमुख बनना था। यह सारा कुछ, और इस सबको भंग किया जाना अभी काफी दूर था। उन दिनों और घटनाओं की बस यही एक स्मृति शेष है : वहां अकेले खड़े हुए, खोये-से और आश्चर्यजनक रूप से विलग। अपना बचपन, विद्यालय और पिटाई, उसे कुछ भी याद नहीं है। बाद में उसी अध्यापक ने जो उसकी पिटाई किया करता था, उसको बताया कि कोई भी दिन ऐसा नहीं जाता था जब वह छड़ी से उसकी पिटाई नहीं करता हो। वह रोता था और स्कूल खत्म होने तक उसे बाहर बरामदे में खड़ा कर दिया जाता था। और जब तक अध्यापक बाहर निकलकर उसे घर जाने के लिए नहीं कहते, वह वहां से हिलता ही नहीं था। उसी आदमी ने बताया कि उसे इसलिए मार पड़ती थी कि जो कुछ भी वह पढ़ता या उसे बताया जाता, वह कुछ भी याद नहीं रख पाता था। अध्यापक को यह विश्वास ही नहीं हो रहा था कि यह वही लड़का है जिसकी वार्ता को उन्होंने अभी सुना था; उन्हें बेहद आश्चर्य हुआ था और वह अनावश्यक रूप से सम्मान प्रकट करने लगे। वे सारे वर्ष बीत गए उसके मन पर बिना कोई चिन्ह और स्मृति छोड़े; उसकी मित्रताएं, उसका स्नेह और वे सारे वर्ष जब उसके साथ बुरा बर्ताव हुआ— मित्रतापूर्ण या क्रूरतापूर्ण, कैसी भी घटनाओं का उसके मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अभी कुछ साल पहले जब किसी लेखक ने उससे पूछा कि क्या वह उन विचित्र घटनाओं को याद कर सकता है और जब उसने यह जवाब दिया कि उसे कुछ भी याद नहीं है और वह केवल उन्हीं बातों को दोहरा सकता है जो उसने दूसरे लोगों से सुनी हैं, तो उस व्यक्ति ने उपहासपूर्ण ढंग से कहा कि वह दिखावा कर रहा है, ढोंग कर रहा है। सुखद या दुखद किसी भी घटना को सचेत होकर उसने कभी अपने मन में आने से नहीं रोका। वे आयीं और बिना कोई चिन्ह अंकित किये चली गयीं।

'कृष्णमूर्ति एक जीवनी' पुस्तक से

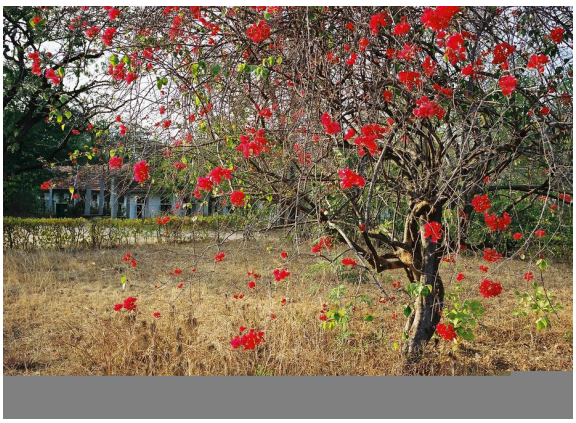

'शिक्षा संवाद' पुस्तक का संशोधित संस्करण अब 'जे. कृष्णमूर्ति : शिक्षा के आयाम' शीर्षक से शीघ्र ही उपलब्ध होने जा रहा है। कृष्णमूर्ति जी की शिक्षाओं से संबंधित प्रकाशित सामग्री व परिसंवाद पत्रिका प्राप्त करने हेतु आप यहाँ दिये गये ईमेल व फोन पर हमें संपर्क कर सकते हैं।

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर
राजघाट फोर्ट, वाराणसी -221001
फोन : 6394751394
ईमेल : studycentre@rajghatbesantschool.org
Website: www.rajghatbesantschool.org
www.facebook.com/people/%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%9F%E0%A4%A1%
www.youtube.com/channel/UCveodIIPPm2FmnhGmFlDzMA

सूचना

"हम साथ-साथ समझदारी से, तर्कपूर्वक सोचने जा रहे हैं। हम एक ही वस्तु को साथ-साथ देखें। यह नहीं कि आप किस तरह देखते हैं और मैं किस तरह, बल्कि हम साथ-साथ अपने दैनिक जीवन का अन्वेषण करें जो कि अन्य किसी भी चीज़ से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है - दिन के प्रत्येक क्षण का अवलोकन।"

- 'अंतिम वार्ताएं', पुष्ठ 52

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर,
राजघाट, वाराणसी
आवासीय हिन्दी रिट्रीट
25–27 सितम्बर 2021
जे. कृष्णमूर्ति का सन्देश : एक परिचय
(An introduction to J. Krishnamurti's message)

"यदि आप सारा जीवन उत्तर दिशा में चलते रहे हैं यानी एक विशेष दिशा में, या आप बिना किसी दिशा के ही चलते रहे हैं, जैसा कि अधिकतर लोग अस्थिरता में डगमग-डगमग चलते रहते हैं - और ऐसी स्थिति में यदि कोई आदमी आकर अत्यन्त गंभीरतापूर्वक आपसे कहता है कि उत्तर दिशा में चलते रहने से आप कहीं नहीं पहुँचेंगे, इस मार्ग के अंत में कुछ नहीं है, तो आप गंभीरता से उसकी बात सुनते हैं, न केवल कान से, बल्कि गहराई के साथ। आपको पूरब या दक्षिण दिशा में जाने के लिए कहा जाता है, और आप कहते हैं, "मैं ऐसा ही करूँगा"। उस क्षण आपने एक नया मोड़ लिया, और वहीं पर गुणात्मक क्रांति, 'म्यूटेशन' है।"

'वाशिंगटन वार्ताएं' पृष्ठ 23

भारतीय भाषाओं की वेबसाइट हेतु निम्न लिंक पर जाएं :
www.jkrishnamurtionline.org

'स्वयं से संवाद' डिजिटल न्यूज़लेटर
संकलन-संयोजन : टी.पी.सी. टीम